मली आगे मुडती है में चित्रित छात्र आंदोलनः– एक मुल्यांकन

प्रथम अध्याय–

आजादी के बाद हुए विविध जनांदोलन–

1. कृषक आंदोलन
2. दलित–मुक्ति आंदोलन
3. मिल–मजदूर आंदोलन
4. नारी–मुक्ति आंदोलन
5. युवा आंदोलन

निष्कर्ष

प्रथम अध्याय

आजादी के पश्चात निर्मित विविध जनांदोलन

शिवप्रसाद सिंह के "गली आगे मुड़ती है" में चित्रित छात्र आंदोलन" प्रस्तुत लघु-शोध प्रबंध का विषय रहा हे। इस लघु-शोध-प्रबंध में निहित छात्र आंदोलन का जिक्र पेश करते समय पृष्ठभूमि के तौर पर आजादी के बाद निर्मित विविध जनांदोलनपर एक दृष्टिक्षेप डालनेका प्रयत्न अनिवार्य लगता है। प्रस्तुत लघु-शोध-प्रबंध के प्रथम अध्याय में हमने कृषक आंदोलन, दलित मुक्ति आंदोलन, मिलमजदूर आंदोलन, नारी मुक्ति आंदोलन, युवा आंदोलन आदि विविध आंदोलनों के विविध आयामों पर सोचा है और वह दिखाने का प्रयत्न किया है कि आज के दिनों आंदोलनों की आवश्यकता क्यों और किसलिए हैं।

प्रस्तुत अध्याय के प्रारंभ में हमने सामाजिक आंदोलन, आंदोलन की संकल्पना सामाजिक आंदोलन और समाज क्रांति, भारत में निर्मित विविध जनांदोलनों की पृष्ठभूमि आदि पर भी विचार किया है। आज देश के विविध सामाजिक स्तरों पर आंदोलनोंकी हवा बहने लगी है। लोगों में एक प्रकारकी चेतना नया अस्मिता का निर्माण होता जा राह है। इसी चेतना प्रवृत्ति के परिणाम स्वरुप अन्याय, अत्याचार के खिलाफ लोग आवाज उठाकर संगठित शक्ति के सहारे आंदोलन खडे कर रहा हैं। प्रस्तुत अध्याय में हमने पृष्ठभूमि के तौर पर विविध जनांदोलनों पर विचार किया है।

सामाजिक आंदोलन :

समाज में सुधार ओर धार्मिक प्रथा में परिवर्तन लाने के हेतु स्वतंत्र भारत में आज तक अनेक आंदोलन खडे हुए। परंपरागत समाज को नया मोड देकर उसमें नयी चेतना भरने के लिए कओ आंदोलक आगे बढ़ते हैं। सामाजिक आंदोलन समाज परिवर्तन के साथ जुड़े हुए हैं। पुरान मतवादी एवं परंपरावादी लोग जनांदोलन नहीं चाहते। वे यथाशक्ति रहना चाहते हैं। पुराने विचार, पुरानी प्रथा, पुराने रश्म–रिवाज समाज परिवर्तन के साथ परिवर्तित होने चाहिए नहीं तो समाज विकास में बाधा पहुँचती है। पुरानी प्रथाएँ अक्सर समाज विकास में बाधक होती हैं तब ऐसी प्रथाओं के खिलाफ संगठित बनकर आंदोलन करना पड़ता है। अपने सर्वस्व को त्यागकर समाजसेवी या क्रान्तिकारी को आंदोलनों में शरीक होना पड़ता है। समाज विघातक आंदोलनों को रोकने का काम भी आंदोलनोंव्दाराही किया जाता है। आंदोलनकारी समाज में चेतना भरकर समाज को अपने हक्कों और कर्तव्यों के लिए सतर्क बनाना चाहते हैं।

आंदोलनकारी की संकल्पना :

मुर्दावत बने हुए समाज में चेतना भरने का काम करनेवाला आंदोलक कहलाया जाता है। आंदोलक व्यक्ति को कओ संकेतों का पालन करना पड़ता है। आंदोलक त्यागी और बागी होना चाहिए। अपने विचारों के व्दारा वे लोगों को संगठित करना चाहते हैं। उसे आंदोलकारियों के साथ घुलमिलकर रहना चाहिए, आंदोलकों में दरारें न पडे इसपर सतर्क रहना चाहिए। आंदोलन समाज के लिए विघातक न बने इसपर सोचना चाहिए, उसका बर्ताव अच्छा होना चाहिए। आंदोलनकारिओं का अलग व्यक्तित्व हो। आंदोलक के विचारों पर अन्य आंदोलनकारी लोग चलते हैं। कभी–कभी उन विचारों का पूरा अध्ययन आंदोलनों के कार्यकर्ताओं व्दारा नहीं किया जाता परिणामतः आंदोलन गलत दिशा पकडते हैं। कओ आंदोलन दीर्घ कालतक तो कओ आंदोलन थोडी अवधि के लिए चलाये जाते हैं। आंदोलनकारिओंको आंदोलन के विचारों के साथ चलना पड़ता है। समय पडने पर आंदोलन पर अपनी कुर्बानी भी चढ़ाई जाती है। मंडल विरोधी आंदोलन इसी कोटि में आ सकता है।

सामाजिक आंदोलन और समाज क्रान्ति :

समाज परिवर्तनीय होता है। सभी परिवर्तन सिर्फ आंदोलनों से नहीं होते। कभी कुछ परिवर्तन एखाधं व्यक्तिभी करता है। परिवर्तन करके नया समाज, नये मूल्य और नयी परंपराएँ निर्माण करने के लिए आंदोलनों की आवश्यकता होती है। विकास मार्ग में अवरोध लानेवाली विष्ठाओं के खिलाफ आंदोलन खडे किये जाते हैं। दलित आंदोलन इसी कोटि में आ सकता है। समाज के छोटे समुदाय व्दारा चलाये गये आंदोलन अल्पावधिके लिए होते हैं। उनकी व्याप्ति और अवधि भी अल्प होती है। बडे समुदाय व्दारा चलाये गये आंदोलन प्रदीर्घ समय तक रहते हैं।

सुधारवादी आंदोलन और क्रान्तिकारी आंदोलनों में फर्क दिखाई देता है। सुधारवादी आंदोलनों व्दारा विकसीत मूल्यों को समाज तक पहुँचाया जाता है। क्रान्ति व्दारा नये मूल्यबनाये जाते हैं। जिसे सुधारवादी आंदोलन प्रत्यक्ष में लाते हैं। आंदोलन की दिशा से उसके परिवर्तन की तीव्रता, स्वरुप निश्चित होता है। इससे आंदोलनकारिओं का उद्देश्य समझ में आता है। पुरातनवादी, नरम मतवादी, उदारमतवादी आदि नाम देकर उसे स्पष्ट करते हैं। क्रान्ति से परिवर्तन जल्दी लाया जाता है। सुधारवाददी आंदोलनसे धीरे–धीरे परिवर्तन लाया जाता है।

आंदोलन की संकल्पना :

समाज परिवर्तनीय हैं और मानव विकासमान। समाज का प्रमुख आधार आर्थिक रहा है। उत्पादक शक्तियों के विकास से आर्थिक व्यवस्था में परिवर्तन होता है। बढते हुए उत्पादक साधन और उत्पादन प्रणालियों से सामाजिक सम्बन्धों में परिवर्तन लक्षित होते हैं। ऊपरी ढँचा का आधार है, आर्थिकता और इसपर मानव का स्वतंत्र अस्तित्व आधारित हैं और इसी आधारपर मनुष्य भविष्य–निर्माण में जुडा रहता है। "समाज में परिवर्तन आवश्यक है क्योंकि भविष्य के विकास में यह व्यवस्था बाधा बन सकती है। नवीन आवश्यकताओं और परिस्थितियों से निर्मित सामाजिक सम्बन्ध और पिछडे युग की समाज व्यवस्था के संघर्ष से समाज में अनेक अंतर्विरोधों की सृष्टि होती है। ये वर्ग जिनके हित पूर्व समाजव्यवस्था में सुरक्षित होते हैं, उसमें किसी भी प्रकार के परिवर्तन का विरोध करते हैं। सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन लाने वाले सामूहिक प्रयत्न को ही समाजिक आंदोलन कहा जाता है।"[1] आज तक इतिहास में जो मानवहित के हेतु आंदोलन हुए वे महत्वपूर्ण एवं सर्वांगीण रहें हैं। ये आंदोलन सभी क्षेत्र में फैले हुए हैं। इन आंदोलनोंका निर्माण भौतिक परिस्थितियों मे होता है, इन आंदोलनों में स्थित संघर्षो से नई चेतना उत्पन्न

होती हैं और ये आंदोलन नव–निर्माण के लिए प्रेरणा प्रदान करते हैं।

सभी प्रकार के आंदोलन मानव समाज के लिए अनिवार्य हुआ करते हैं वे किसी वर्ग विशेष की इच्छा से निर्माण नहीं होते या उनपर निर्भर नहीं रहते। ये आंदोलन किसी अलौकिक पुरुष के प्रभाव से निर्माण नहीं होते हैं। वे समाजिक आवश्यकता से सृजित होते है, और समाजिक विकास के लिए आवश्यकभी होते हैं। ये आंदोलन किसी विशिष्ट व्यक्ति की प्रेरणा या सनक पर आधारित नहीं होते, परिवर्तन लानेवाले आंदोलन एक–दो पर्व नहीं अर्धशताब्दी या शताब्दी तक चला करते हैं। उसमें एक दो व्यक्ति नहीं समस्त जनता भाग लेती है। दार्शनिकों, राजनीतिज्ञों तथा कलाकारों आदि सभी को सामाजिक ध्येय पूर्ति के लिए अपना समुचित सहयोग देना पड़ता है। सामाजिक आंदोलन विकास और क्रान्ति दोनों को अपने प्रवाह में सपृक्त कर लेते हैं। क्रान्ति से ही विकास की धरोहर बन सकती है। विकास प्रकियाव्दारा घटित परिवर्तन एक दिन क्रान्ति में परिवर्तित होता है। नये समाज का निर्माण एकाएक नहीं होता। विकास प्रक्रिया में पुरानी समाज व्यवस्था को नये सांचे में ढालकर नया समाज निर्मित किया जा सकता हैं। आंदोलन से समाज के विकास को नयी चालना मिलती हैं। आंदोलन तब निर्माण होते हैं जब समाज के विकास में या परिवर्तन में बाधा निर्माण होती है या परंपरागत चले आये उपकरण रुढ एवं निष्क्रिय होने लगते हैं। इसके बारे में यह तथ्य निर्विवाद है – "पहले – पहल किसी भी विचार का स्थायी रुपसे जीवन–मूल्य के रुप में परिवर्तन, वैयक्तिक सूझ-बूझ और प्रतिपादन की व्यापकता के आधारपर हुआ। बाद में बड़े वर्ग व्दारा स्वीकृत हो जाने पर या विश्लेषित किये जाने परवही विचार बाद का रुप धारणकर जीवन प्रक्रिया को एक नयी दिशा देते आया।"[2]

<u>विविध जनांदोलन की पृष्ठभूमि</u> :

आजादी के पूर्व आंदोलनों का उद्देश्य भारत देश को स्वतंत्र बनाना था। उससमय राजनीतिक विचारों से प्रेरित विविध जनआंदोलन खडे हुए। महात्मा गांधी, पं.जवाहरलाल नेहरु, मौलाना आजाद, सुभाषचंद्र बोस आदि नेताओं के नेतृत्व में आजादि हमें मिली। आजादी के पूर्व भारत ऐसे मोडोंपर से गुजर रहा था जहाँ से शान्ति, सत्ता, जातीय समन्वय नष्ट हो गया था। आजादी के बाद देश में भीषण दंगे हुए हत्याकांड, आगजनी, लूट–पाट, बलात्कार आदि पाशविक घटनाये नित्यप्रति की साधारण बातें बन गयी। हिंदुस्तान विभाजन की योजना लार्ड माऊंट बेटेंनने प्रस्तुत की जिसे कॉंग्रेस और मुस्लिम लीग ने स्वीकृती दी। इससे फसाद बढ़ते गये, हजारों लोग बेघर हो गये, अमीर लोग भी टुकडों के लिए मुहताज बन गये। समाज में कष्ट और यातनायें फैल गयी, शरणार्थी कैम्पों में दुर्दशा और जीविका–विच्छिन्नता का वातावरण फैल गया। गांधीजी

साम्प्रदायिक एकता के प्रयास में शहीद हुए। सन 1948 में गांधीजीको गाडसेजी की गोली का शिकार होना पडा।

आजादी के पश्चात भारत की आर्थिक नीति में परिवर्तन आया। विदेशी कंपनियोंव्दारा दिया सलाई, सिगरेट, साबुन, बूट और जूते, रासायनिक पदार्थ आदि का निर्माण किया जाने लगा जिससे भारतीय उद्योग पूर्णतः बहिष्कृत हो गये। युध्द के दौरान औद्योगिक उत्पादन में वृध्दि हुआी। पुराने मशिनों पर अधिक समय और अधिक आदमी लगाकर उत्पादन बढाया गया। महँगाई बढ़ी इसमें मजदूर और मध्यमवर्गियों को पीसना पडा। मिल–मालिक और पूंजीपतियां को इससे बहुत लाभ हुआ। जतना अंग्रेजों के आर्थिक नीति से तंग आयी। भारत के आर्थिक विकास के लिए पंचवर्षीय योजनाएँ, राष्ट्रीय विकास योजना समिती, विकास योजना कमीशन तथा मिश्रित अर्थव्यवस्था आदि योजनाएँ तैयार की गयी लेकिन उसमें भ्रष्टाचार और शोषण बढ़ गया। हमारा देश कृषिप्रधान है कृषकों के लिए कुछ योजनायें बनाई गयी लेकिन भारतीय कृषक जमींदान वर्ग, सूदखोर, महाजन और उसके अमले के तिहरे बोझ के नीचे पिसा जा रहा था।

सांस्कृतिक और सामाजिक स्थिति भी ऐसी थी, कि, भारतियो के मन पर स्थित परंपरागत रुढि प्रथाएँ हल्की बनने लगी थी । उससमय जाति व्यवस्था कठोर थी नारियां को भी निम्न दर्जा दिया जा रहा था। "विज्ञान और यंत्र के पहियों पर चलनेवाली सभ्यता ने जाति व्यवस्था के भेदों को समाप्त करने में सक्रिय योगदान दिया है।"[3] इस प्रयासमें कुछ जातीय बंधनों को कम किया गया।

स्त्रियों को कुछ मात्रा में स्वतंत्रता मिली, 1949 में भारत सरकारने स्त्रियों के लिए कुछ सामाजिक और आर्थिक सुधार किये उसमें मुख्य बातें इसीतरह की थी ,-(1) लडकियां को पिता की संपत्ति में अधिकार दिया गया और पत्नी तथा पुत्री संपत्ति की हकदार रही। (2) पुरुष या स्त्री पहली पत्नी या पति होते हूए दूसरी शादी नहीं कर सकते। जरुरत हो तो तलाक दे सकते हैं, (3) नारी को गोद लेने की स्वतंत्रता हो, आदि कुद सुविधा लाने का प्रयास कियाजा रहा हैं, लेकिन पुराणमतवादी इसका घोर विरोध कर रहे हैं। इतने प्रयास के बाद भी पुरानी रुढ़ियों की तीव्रता कम नहीं कर सके। शिक्षा में परिवर्तन लाया गया, नारियों और अछूतों के लिए शिक्षा देने का प्रयास किया गया। स्वतंत्र के पश्चात शिक्षा और साक्षरता के क्षेत्र में निरंतर प्रगति हो गयी हैं। "सन 1948 के आखिल भारतीय शिक्षा संमेलन की सिफारिश के अनुसार विश्वविद्यालय "शिक्षा कमीशन" डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन की अध्यक्षता में भारत सरकार के व्दारा नियुक्त किया गया। इसने शिक्षा सम्बन्धी अनेक महत्वपूर्ण सूझाव अपनी विव्दतापूर्ण रिपोर्ट में

प्रस्तुत किये।" 4 इसीतरह शिक्षा कार्य प्रचंड रुप से बढ़ता गया। आज सभी क्षेत्र में विद्यालयों को शुरु किया हैं तांत्रिक, कृषि के अनुसंधान के सम्बध्द, वैदयकीय आदी नयी-नयी संस्थाओं का निर्माण हो रहा हैं। इसीतरह नारियों को भी शिक्षा में कुछ सुविधा दी गयी। विधवाओं को छात्रवृतियाँ देने का आयोजन किया गया, मुफ्त शिक्षा का आयोजन किया गया। समाज में नारियों के शिक्षा के लिए लोगों के विचारों में परिवर्तन लाने का प्रयास किया गया।

शिक्षा व्यवस्था और नारी स्वतंत्रता के साथ दलित आंदोलन भी हुआ। मंदिरों में हरिजन प्रवेश, जातीय भेदाभेद को प्रतिबंध आदि का अवलंब कराया गया। दलित आंदोलन को आजादी के बाद भी जारी रखा। नाशिक के कालाराम मंदिर और मदुरा के मीनाक्षी मंदिर में हरिजनों को प्रवेश दिया गया। संविधान में अछूतों को सवर्णों के समान अधिकार दिये गये और अस्पृशता को सदैव के लिए समाप्तकर दिया गया। हरिजनों पर किसी कारण वश लगाये गये किसी प्रकार के प्रतिबंधको अपराध मानकर दण्डविधान का आयोजन किया गया।

दलित आंदोलन के साथ छात्रांदोलन भी तीव्र होता गया। भारत के स्वाधीनता संग्राम में छात्रों का योगदान अविस्मरणीय रहा हैं। 1936 से 1940 तक "आखिल भारतीय छात्र संघ" सफलता से छात्रों का नेतृत्व करता रहा। बाद में इनमें दो गुंट बने। जैसे एक ओर साम्यवादी छात्र रहे तो दूसरी ओर गैरसाम्यवादी छात्र रहे। साम्यवादी छात्र गांधी के आंदोलन को ब्रिटिश साम्राज्यवाद के प्रति "एक नम्र विरोध" बताते तो गैरसाम्यवादी छात्र विपरीत सविनय अवज्ञा आंदोलन को एक बहुत शानदार विरोध घोषित किया करते। इसके बाद इन विचारों के आधारपर अनेक छात्र संघ निर्माण हुए और भंग भी हुए। जिसमें स्टुडेंण्ट फेडरेशन" जिसकी सभानेत्री थी राजकुमारी अमृत कौर उसने सन 1944 में "नेशनलिस्ट स्टूडेन्ट फेडरेशन" स्थापित किया, उसके बाद उसे बदलकर उसे "अखिल भारतीय नेशनलिस्ट स्टूडेन्टस् कॅांग्रेस" कर दिया। कॅांग्रेस का अंतिम अधिवेशन 1948 में हुआ उसीसमय "स्टुडेन्टस कॅांग्रेस" भंग करके "नॅशनल यूनियन ऑफ स्टूडेन्टस" नामक संघटना का निर्माण हुआ। इसतरह छात्र आंदोलन का नया रुप लोगों के सामने आता गया।

पूंजीपतियों के व्दारा दुर्बलों का शोषण हो रहा था। पूंजीपतिथों के विरोध में आंदोलन शुरु हुए इसी से मार्क्सवाद का प्रणयन हुआ। उसके साथ उच्च वर्गिय लोग निम्न जातियों के लोगों पर अपना प्रभाव जमाकर उनके हित की सिर्फ बातें करते हुए उन्हें लूट रहे थे। नौकरशाही देशपर पहले से अपना अस्तित्व मजबू कर चुँकी थी। आजादी के बाद उसमें कुछ फर्क नहीं हुआ।

धार्मिक शोषण भी उसी तरह चलता रहा जैसे कि, आजादी के पूर्व चल रहा था। धर्म के नाम पर लोगों को लूटना, ठगाना, भोग-विलास कराना आदि बातें जैसे की तैसी रहगयी। इसीतरह की स्थिति आजादी के बाद भी रही।

संक्षेप में भारतीय सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक माहौलों के बीच नारी-मुक्ति आंदोलन छात्र-आंदोलन, धार्मिक सांप्रदायिक आंदोलन, मालिक-मजदूर आंदोलन, दलित मुक्ति आंदोलन आदि कओी विशिष्ट आंदोलनों का निर्माण हुआ जिससे लोगों में स्थित चेतना जागृति का पता हमें चलता रहा। ये आंदोलन सुधार आंदोलन रहें। इनका चित्रण हम आगे चलकर विस्तार से करेंगे।

(1) <u>कृषक आंदोलन</u> :

अंग्रेजों ने भारत में जमींदारी प्रथा को प्रश्रय देकर जमींदारो की सहायता से भारतीय जनमानस पर अपना राज्य स्थापित किया। राष्ट्रीय स्तर पर जमींदार कृषकों और सामान्य जनता का अमानवीय शोषण करते रहें। आजादी के पश्चात राष्ट्रीय नेताओं ने इन जमींदार सामंतों को समाप्त करने की योजना बनाई। जमींदारी उन्मूलन का कानून पारित किया। " भारतीय कृषि और भूमि व्यवस्था के पुनरुध्दार की दिशा में लगान उपजीवी जमींदार वर्ग के अधिकारों को किसी हद तक घटाकर कृषि विकास की पूर्व स्थितियाँ पैदा की।"5 कृषक और कृषि को विकसित करने के लिए यह सरकार व्दारा पहला कदम उठाया गया। **राम बिहारी तोमर के मतानुसार** "जमींदारी उन्मूलन का यह आधार आर्थिक न होकर राजनीतिक था। जमींदार और जनता के बीच सदैव चला आया संघर्ष। इसी के फलसवरुप जमींदारी का उन्मूलन हुआ।

आज जमींदारी और जमींदार नहीं रहे। फिर भी उनकी पुरानी ऐंठनअभी तक शेष है। ये जमींदारों के वंशज अपने पुरखों की परंपरा को आज भी चलाना चाहते हैं। किसानों तथा कृषकों पर जबरदस्ती करके उन्हें धोखा देना, उनका शोषण करना, किसानों से लगान वसूल करना, उनसे बेगार लेना, बेगार लेने से इनकार करने पर कृषकों की पीटाई करना, उनके घरों को ध्वस्त करना, उनके स्त्रियों की अस्मत को लूटना, झूठे मुकदमें कृषकों पर दायर करना, कुर्की चढाना निलाम करना, पुलिसों या सरकारी अफसरों की सहायता से उनपर अत्याचार कराना, , त्यौहार के समय उपनपर दबाव लाकर उनसे पैसे वसूल करना, पूरे गाँव पर दंड थोंपना आदि विविध तरीकें अपनाकर जमींदार गरीब और दरीद्री किसानों एवं कृषकों का शोषण किया करते थे। आज जमींदारों के वंशज उदार एंव उच्च विचार के दिखाई देते हैं परंतु वे अपनी वर्गीय सीमाओं को लांघ न सकने के कारण आत्मग्लानी से पीडित हैं। कृषि-महाविद्यालयों से

उपाधियाँ हासिल करनेवाले जमींदारों के शिक्षित वंशज पुस्त-दर-पुस्त की शोषण नीति से छुटकारा नहीं पा रहे हैं।

आज कृषि-क्षेत्र में औद्योगीकरण हो रहा हैं। खाद, सिंचाई, बीज के नये-नये प्रयोग होते जा रहे हैं। उत्पादन बढ़ता जा रहा है फिर भी जमींदारों की विलसिता, स्वार्थ परायणता में कोई फर्क नहीं आ रहा है। आज के जमींदार राजनीति में शरीक होकर चुनाव लडाते हैं और गाँव की राजनीति में भी ऊँचा स्थान रखने की कोशिश कर रहे हैं। आज भी भारतीय प्रांतीय राजनीति में जमींदारों की ही संख्या अधिक लक्षित होती है।

आज गाँवो में एक नया जमींदार वर्ग पन पने लगा हैं जो महाजनी शोषण में जुटकर धनिक बनने की चाह रखता है। गरीब किसानों को उनकी आप्पत्ति में सूद पर रक्कम देकर बदले में उनकी जमीन या घर गिरवी रख लेता है। सूद तथा रक्कम समय पर न मिलने पर उनके घर या जमीन को हाथियाता है। पुलिस से दांत-काटी-रोटी का संबंध रखकर गरीब कृषकों का शोषण निरंतर शुरु रहता हे।

आज युग चेतना के परिणाम स्वरुप कृषकों में जमींदारों के अन्याय और अत्याचार के खिलाफ वर्ग-संघर्ष करने की शक्ति का निर्माण हो रहा है। सन 1975 को सरकार ने आपात-कालीन स्थिति की घोषण करके बेगार प्रथा को अवैधानिक घोषित किया परंतु पिछडे इलाकों में आज भी यह प्रथा कम अधिक मात्रा में देखने को मिलती है। कृषकों से जबरदस्ती उनकी तनखा से पैसे काटना, उन्हें कम तनखा देना, खेती परकाम करने को न आने पर उनकी पीटाई करना, माल गुजारी करते समय बेरहमी से बर्ताव करना, किसानों की जमीनें हडप करना, कुर्की लगाना, लगान न देने पर पिटाई करना, उनके स्त्रियों की अस्मत को लुटना आदि घृणात्मक अन्याय अब ये किसान बर्दास्त नहीं कर रहे हैं। उनमें संगठनों का निर्माण होता जा रहा हें जिससे उनकी चेतना जागृत होने लगी है। जमींदारी अन्याय और अत्याचार के खिलाफ वे आंदोलन करने को तैयार हो रहे हैं। बेगार नहीं बनना चाहते हैं। वे व्यथीत होकर आंदोलन के लिए तथा वर्ग संघर्ष के लिए आमदा होने लगे हैं। साठोत्तरी हिंदी में रामदशरथ मिश्र के "पानी के प्राचीर", शिवप्रसाद सिंह के 'अलग-अग वैतरणी", जगदीशचंद्र के "धरती धन न अपना", रामदरश मिश्र के "जल टूटता हुआ"--- मोहरसिंह यादव के "बंजर धरती" विवेकी राय के "लोकऋण" में जमींदार कृषक संघर्ष दिखाकर कृषकों की चेतना प्रवृत्ति को जागृत करके उनको जमींदारों के खिलाफ आंदोलनों के लिए जगृत करने का प्रयत्न किया गया है।

आज सरकार कृषकों को वेठबिगारी उन्मूलन, उचित वेतन की हामी देकर उनके विकास के लिए प्रयत्नबध्द है परंतु जब तक इन लोगों के बीच का अज्ञान, अंधविश्वास नष्ट नही होगा तब तक उनमें चेतना प्रवृत्ति का निर्माण नहीं होगा। आज शिक्षा–दीक्षा की उदार सरकारी नीति के कारण देहातों में शिक्षा की ज्ञान गंगा फैलती जा रही है जिससे इन लोगों मे क्रांति तथा विद्रोह की भावना पनपने लगी हैं। भैरवप्रसाद गुप्तजी का "गंगा मैया" उपन्यास इसी दिशा में महत्वपूर्ण योगदान निभा सकता है। आज कृषकों के आंदोलन को दबाने का काम भी जमींदारोंव्दारा हो रहा हैं। "अलग अलग वैतरणी" इसी दिशा में महत्वपूर्ण लगता है। आंदोलन, क्रांति करने की यह है, परंतु पूर्ण शक्ति के अभाव में और जमींदारोंव्दारा उनकी संगठन शक्ति में दरारें पैदा करने की घृणात्मक नीति के कारण उनके व्दारा चलाये गये आंदोलन अधिक रुप में सफल नहीं बनते जा रहे हैं।

"वस्तुतः अपने संघर्ष के अंत विरोधों के कारण ही सर्वहारा की शक्तिशाली लडाई टूटकर बिखर जाती है। ऐसी स्थिति में उसे न्याय मिलना तो दूर उसके ऊपर होनेवाले अत्याचार और दमन बढ़ जाते हैं। वस्तुतः संगठित होकर संघर्ष करने के सिवा शोषित वर्ग के पास कोई दूसरा विकल्प नहीं है। अगर वह शोषण से मुक्ति चाहता है, तो उसे अपनी कमजोरियों को दूर करना होगा और कमजोरी तभीदूर हो सकती है, जब उमनें वर्गिय चेतना हो और वाजिब हकों को लडकर ले लेने का दृढ संकल्प हो।"[6]

निष्कर्ष :

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि, सामंतों के व्दारा गरीब लोगों पर अतयाचार किये गये। आजादी के बाद शासनव्दारा कुछ सुविधा दी गयी लेकिन वह कागजों तक और नेताओं तक सिमित रहीं। कृषक वर्ग वेसा ही पीडित रहा जैसा आजादी केपूर्व था। सर्वहारा वर्ग जिसमें कृषक, गरीब लोग, मिलमजदूर लोग आते हैं, उन्हें अपना अत्याचार नष्ट करना होगा। उसके लिए एकता होनी चाहिए। ताकि सामंतवादियों को झूका सके। अगर सभी लोग निर्भय बनकर लडेंगे तो सामंतों को झूकना पडेगा ही। शिक्षा को अपनाकर अज्ञान को दूर करके आनेवाला कल याने भविष्य में कृषकों के वारिशों को सम्मान के साथ अपना जीवन बिताने मौका मिलेगा।

कृषकों का जमींदारों के खिलाफ आंदोलन रामदरश मिश्र के "पानी के प्राचीर", 1961, शिवप्रसाद सिंह के "अलग–अलग वैतरणी", 1967, जगदीशचंद्र के "धरती धन न अपना", 1972, रामदरश मिश्र के "जल टूटना हुआ", 1979, तथा "नई बिसात" 1980 आदि उपन्यासों

में इस आंदोलन के दर्शन होते हैं। साठोत्तरी कालखंडमें कृषकों में नईचेतना भरने का काम इन उपन्यासों में किया गया है। भैरवप्रसाद गुप्त का "गंगा मैया" उपन्यास भी कृषक आंदोलन के लिए एक निश्चित योगदान रहा है।

(2) <u>दलित–मुक्ति आंदोलन</u> :

भारत में वर्ण–व्यवस्था के परिणाम स्वरुप जातीय भेदाभेदों का निर्माण हुआ। देश आजाद होकर सैंतालीस वर्ष हो चुके परंतु दलितों पर होनेवाले अन्याय और अत्याचार कम नहीं हो रहें हैं लगता था कि आजादी के बाद तो इन लोगों पर होनेवाले अन्याय और अत्याचार तो हट जायेंगे, परंतु यह असंभव रहा। स्वातंत्र्य पूर्व काल में "दलित मुक्ति आंदोलन" राष्ट्रीय आंदोलन के साथ जोडा गया था। समाज के अलग–अलग क्षेत्र के लोग अपने अपने क्षेत्र में अपने–अपने मध्यम के व्दारा दलितोध्दार कार्य में लगे थे हिंदी उपन्यास लेखक इस कार्य में अत्यांतिक जागरुक और सतर्क थे। राजनीतिक और समाज सुधारकों की अपेक्षा हिंदी उपन्यास लेखकों के विचार पुरोगामी थे। उपन्यास सम्राट प्रेमचंदजीने इस विषय में अत्यंत महत्वपूर्ण योग दान निभाया था। उन्होंने अपने उपन्यासों के व्दारा सामाजिक न्याय की मांग पेश करके समाज में स्थित जातीय भेदाभेद, उंच–नीचता, स्पृश्या–स्पृश्यता आदि को खोलकर समाज के पास प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया। अस्पश्यता को हटाने के लिए रोटी–बेटी व्यवहार की बेडियाँ तोडनी चाहिए, धर्म और उत्सव में उन्हें सम्मिलित होने का अवसर प्रदान करना चाहिए ऐसा दृढ़ मत प्रेमचंदजी का था। रुढ़िवादी मान्यताओं के खिलाफ अपने साहित्य के माध्यम से उन्होंने आंदोलन ही शुरु किया। उन्होंने "कर्मभूमि" और "गोदान" में दलितोध्दार के लिए प्रयत्न शुरु किया। दलित साहित्य आंदोलन धीरे–धीरे पनपने लगा।

"दलित साहित्य ने दलित वर्ग में अस्मिता का निर्माण किया। इसमें दलितों की अस्मिता का विस्फोट और अन्याय तथा शोषण के प्रति सजगता हैं।" 7 आज भी दलितों की पीडा ने व्यापक रुपधारण किया है। भारत के दलित आज भी क्रूर और अमानवीय यातना के शिकार हैं। गत कुछ वर्षो से इस वर्ग के लोगों पर हुए अन्याय और हत्याकांडों ने इस दूषित व्यवस्था को फिर नंगा बना दिया। अस्पृश्यता को प्रतिबंध लगाने के लिए सरकारव्दारा कानून बनाये गये परंतु आज भी हम देखते हैं कि कानूनों से अस्पृश्यता नहीं हठी हैं। देहातों मे दलितों पर अत्याचार बढ़ते रहे हैं, उनसे बेगार लिया जा रहा हैं, उनके स्त्रियों की अस्मत को दिन–दहाडे लूटा जा रहा है। हत्याकांड, अग्निकाण्ड, बढते जा रहे हैं। जमींदार और दलित श्रमिकों के बीच का

संघर्ष भयावह रुप धारण कर रहा हैं। वर्ण श्रेष्ठत्व के कारण प्रतिशोध की भावना पन लगी है। ग्रामांचालों की इस स्थिति को देखकर दलित शहरों की तरफ जा रहे हैं।

शहरों में स्थित दलित वर्ग कुछ अंशों में सुशिक्षित होता जा रहा हैं। वे पुराने सफेदपोशों से संघर्ष कर रहे हैं। छात्र-वृतियों, आरक्षितस्थानों एवं सरकार की पक्षधरता के कारण उन्हे सुस्थिति प्राप्त होती जा रही है। इतनी सुविधाओं के बावजूद भी उनका विकास अधिकतर मात्रा में नहीं हो चुका है। जो दलित इन सुविधाओं से फायदा उठाकर बडे हुए वे "दलित ब्राहमण" बने। उन्होंने अपने दलित भाइयों को उपर उठाने के लिए विशेष प्रतिबध्दता नहीं देखाई। दलितों को प्राप्त सुविधाओं को देखकर सवर्ण-दलित संघर्ष बढने लगा हैं। "गुजरात आंदोलन", "मराठवाडा आंदोलन" इसके अच्छे उदाहरण हो सकते हैं।

महाराष्ट्र में दलित मुक्ति आंदोलन प्रभावशाली लेखकों एवं कवियों के व्दारा स्वयंप्रेरणा से चलाया गया इन लेखकों ने अपने साहित्य में अनुभूति-जन्य वेदना, पीडा, दुःख और दर्द के यथार्थ रुप को चित्रांकित किया। यह आंदोलन जागरण और समाज प्रबोधन का आंदोलन रहा। इस आंदोलन की चेतना मूल्य गर्भ चेतना रही। "यह दलित साहित्य आंदोलन मनुष्य को केंद्र बनाता है। मनुष्य को महानता प्रदान करता है। मानवी स्वातंत्र्य का जी-जान से उद्‌घोष करता है।"[8] यह आंदोलन दलित लेखकों, दलित साहित्य निर्माताओं तथा सृजनशील कलाकारों का आंदोलन रहा।

इस साहित्य ने दलितों में चेतना प्रवृत्ति जागृत हुआी, सर्वव्यापी क्रांति का ऐलान किया, अनुभूतिजन्य वेदना से विद्रोह एवं प्रतिकार की भावना को दलितों से विद्रोह एवं प्रतिकार की भावना को दलितों में बढ़ाया।

सवर्ण-दलित संघर्ष, दलित नारी पर हुए अन्याय, अत्याचार, भूमिहीन खेतिहर, दलित मजदूरों का शोषण, जातीय भेदाभेद, मंदिर प्रवेश प्रतिबंध, सवर्णो के पनवथे पर पानी भरने के लिए रोकथाम, जमींदारोंव्दारा दलित मजदूरो की पीटाई, आर्थिक दुर्बलता, दलितों की विवशता तथा मजबूरी, चेतना प्राप्त दलित युवकों की हत्या, अग्निकांड आदि अन्याय और अत्याचारों में दलित अब पीसना नहीं चाहते। वे संघर्ष करने को आमदा हो चुके हैं।

सन 1960 तक दलितों में से अधिकांश लोग देहातों में रहते, मजदूरी करते रहते, मृतक जानवरों की खाल निकालकर कुछ पैसे कमाते परंपरागत व्यवसाय अपनाकर मजबूरी का जीवन यापन करते थे। सन 1960 के पश्चात दलित जनजातियों को सरकार की सहानुभूति मिली,

नौकरी में आरक्षण की व्यवस्था हुओ, छात्र वृत्तियों की व्यवस्था हुओ, दलित शहरों की तरफ दौडते रहें, सरकारी सुविधाओं के परिणाम स्वरुप दलितों में शिक्षा प्रसार अधिक हुआ। शिक्षा से उनके मन में अन्याय के खिलाफ चेतना जागृति हुओ, वे वर्ग संघर्ष के लिए तथा आंदोलनों के लिए तैयार होने लगे। सन 1980 तक आते-आते इस वर्ग में सुधार होने लगा, पढे-लिखे लोगों की संख्या इनमें बढने लगी, उनकी बौध्दिक और सांस्कृतिक क्षमता विकसित होने लगी। भौतिक विकास से उनकी अपेक्षाएँ बढने लगी। कुछ लोगों ने क्षुब्ध होकर ईसाइ या मुस्लिम धर्म स्विकार किया। एक धर्मोपदेक कहते हैं - "हमने यहाँ आकर पाँच साल में अभी तक साढ़े चार हजार ईसाई बना लिये वे गरीहब पहले हिंदुओं में भंगी और चमार माने जाते । हमने उनकी मर्जी से ही बिना लालच दिये, ईसा का पाक नाम सुनाकर उनहें अंध:कार में प्रकाश दिखाया है, उन्हें बराबरी का संदेश सुनाया है। आज वे ब्रिटिश साम्राज्य में अफसर बनने के योग्य हो गये हैं।" [9] कानून उनका पक्षधर हैं इसका पत्ता उन्हें लगा। उनमें स्वयंस्फूर्त व्यवहार की चाह विकसित होने लगी। डॉ. वायु. बी. धुमाळजी के मतानुसार - "इस विकसित स्थिति में दलित मानवी समानता की मांग पेश करने लगे, उनमें सजगता, संवेदनशीलता, सामाजिक जागरण की चेतना, सामाजिक परिवर्तन के लिए क्रांति करने की प्रवृतित उभरने लगी। इसी कारण ये लोग वर्ग - वैषम्य की लड़ाई लडने के लिए आंदोलन खडे करने लगे। अपने हकों ओर कर्तव्यों के प्रति चेतीत होने लगे।" [10] आरक्षण के लिए दलितों का आंदोलन इसका अच्छा उदाहरण हो सकता हैं। नागपूर में 1956 में दलितोंव्दारा किया गया धर्मांतर एक व्यापक आंदोलन का प्रतिक हो सकता है।

साठोतरी हिंदी के रामदरश मिश्र के "पानी के प्राचीर", 1961, शिंवप्रसाद सिंह के "अलग-अलग वैतरणी", 1967 जगदीशचंद्र के "धरती धन न अपना", 1972, अमृतलाल नागर के "नाच्यौ बहुत गोपाल", 1978, रामदरश मिश्र के "जल टूटता हुआ", 1979, मन्नू भंडारी के "महाभोज", 1979, मोहरासिंह यादव के "बंजर धरती", 1980 आदि उपन्यासों में दलित चेतना, वर्ग संघर्ष और छोटे-छोटे आंदोलन का चित्रण हुआ हैं। इन उपन्यासों पर आंबेडकरजी की विचारधारा का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता हैं।

निष्कर्ष :

दलित अस्मिता को जागृत करने का काम साहित्य के माध्यम से किया गया। सन 1960 के पश्चात दलितों की पीड़ा ने व्यापक रुप धारण कर लिया है। आज भी भारतीय दलित क्रूर अमानवीय यातनाओं के शिकार बने हुए हैं। परंपरा से दलित अन्याय, अत्याचार, हत्याकांड,

अग्निकांड, शोषण, सामाजिक पिछडापन, मजबूरी, विवशता, रुढिवादिता, परंपरा, अंधविश्वास, सवर्णों की हडपनीति के बीच पीसते जा रहे हैं। आज कानून से अस्पृश्यता को हटाने का प्रयत्न सरकारी कर रही है परंतु इससे कअी इलाकों में पेचिदा समस्याएँ निर्माण हो रही हैं। आज शिक्षित दलित इस अन्याय और अत्याचार के खिलाफ आवाज उठाकर नया स्थान प्राप्त करना चाहते हैं। सरकारी आरक्षण, छात्रवृत्तियों ने उन्हें सुस्थिर बनाने का प्रयत्न जारी रखा हैं। धीरे-धीरे यह वर्ग सुधारता जा रहा है। समय-समय पर अन्याय, अत्याचार के खिलाफ निर्भय बनकर आंदोलन खडे कर रहा है। मराठवाडा विश्वविद्यालय का नामांतर संघर्ष इस दिशा में काफी महत्त्वपूर्ण माना जा सकता है। परंतु यहाँ एक बात निश्चित हैं कि, इन दलितों मे केवल गिरी-चुनी जातियाँ ही इस सुविधाओं का फायदा उठाकर ऊँचे-ऊँचे ओहदोंपर विराजमान हो रही हैं। और बाकी जातियों के दलितों के प्रति दुर्लक्ष कर रही हैं, जिसके फलस्वरुप दलित दलितों में भी संघर्ष की स्थितियों का निर्माण हो जाने की संभावना हैं। जिससे वर्ग-वैषम्य का आंदोलन विखंडित होने का धोखा हैं।

रामदरश मिश्र के "पानी के प्राचीर" 1961, शिवप्रसाद सिंह के अलग-अलग वैतरणी" 1967 जगदीशचंद्र के "धरतीधन न अपना", 1972, अमृतलाल नागर के "नाच्यौं बहुत गोपाल", 1978, रामदरश मिश्र के "जल टूटता हुआ", 1979, मन्नू भंडारी के "महाभोज", 1979, मोहरसिंह यादव के "बंजर धरती" 1980, आदि उपन्यासोंमे दलित चेतना से उत्पन्न दलित आंदोलन देखने को मिलते हैं, परंतु इन्हें कुचलने की सवर्णो प्रवृत्तियाँ भी यहाँ उभर उठी है। उपर्युक्त उपन्यासों के व्दारा यह स्पष्ट होता हे कि दलितों में अस्मिता, स्वाभिमान और चेतना प्रवृतिका निर्माण हो रहा है जिससे दलित-मुक्ति-आंदोलन के लिए उचित हवा निर्माण हो रही है।

(3) मिल-मजदूर आंदोलन :

व्दितीय महायुध्द के उपरांत अंग्रजों ने भारत के औद्योगिक विकास के लिए अनुमती दी। धनंजय गाडगीळ के मतानुसार - "भारतीय पूंजीपति आरंभ से आत्मकेंद्रित, स्वार्थपराग एवं मुनाफाखोरी प्रवृत्ति के रहे।" [11] फलतः भारतीय पूंजीपतियों के बारे में जनता की सहानुभूति कभी नहीं रहीं। मिल मालिक, कारखादार इस पूंजीपतियों के अंतर्गत आते हैं। ये धनसंपन्न होते हैं। इनकी संस्कृति अर्थकेंद्रित रहती हैं। ये लोग घरेलु रिश्ते और संबंध की अपेक्षा अर्थमूलक संबंध अधिक चाहते हैं। ये उत्पादित साधनों के मालिक रहते हैं। वर्ग के शोषणपर वे अपना उल्लू सिधा करते हैं। पूंजी के आश्रय से बडे-बडे पाप कर्म छिपाते हैं। ये लोग ऐश्वर्य और विलासिता के आदती रहते हैं। ये सामाजिक और नैतिक स्वास्थ की खातीर नहीं करते।

नीति–अनीति, वैध–अवैध की चिंता नहीं करते। उनके खाने के दांत एक ओर दिखाने के दांत एक होते हैं। राष्ट्रीयता के नाम पर ये लाभान्वित होना चाहते हैं। नैतिक मूल्यों की अवहेलना ये करते हैं। ये धार्मिक आडंबर भी अपने स्वार्थ के लिए रचते हैं। इस वर्ग के लोग स्वार्थी, आत्मकेंद्रित, उपयोगितावादी, अहंभावी और दांवपेच में कुशल होते हैं। लाभ पर दृष्टि केंद्रित करके व्यवसाय में जुट जाते हैं।

इन मालिकों का उद्देश्य मजदूरों का शोषण रहता हैं। वे मजदूरों की आर्थिकता, दयनीयता पर सहानुभूतिपूर्वक नहीं सोचते। मजदूर संगठन को असफल बनाने के लिए रिश्वत देना, सिध्दांतों की हत्या करना, बिचौलिया शक्ति को बढावा देना, गुण्डे एवं सरकार को अपना पक्षधर बनाना, अन्यायी प्रवृत्ति से मजदूरों का शोषण करना, मजदूर संगठनों की घृणा करना, मजदूरों की किस्मत से खिलवाड़ करके अपनी संतान के लिए पुंजी सुरक्षित रखना, मजदूर संगठनों में प्राण फूंकनेवाले कम्यूनिस्टों की नफरत करना, मजदूर नेताओं को खरीदना आदि कुकर्म ये मालिक लोग करते हैं। डॉ. वाय्. बी. धुमाळजी के मतानुसार – "आज का मालिक वर्ग आत्मकेंद्रित, स्वार्थ परायण, मुनाफाखोर, घातक, उत्पादन साधनों का मालिक, पापकर्मी, विलासी, शोषक, मजदूर संगठनों में दरारें पैदा करनेवाला और अपने स्वार्थसिध्दि के लिए हत्यारा भी बनता रहता हैं।"[12]

आज मिल–मालिक व्दारा बिचौलिया शक्ति के माध्यम से मजदूर संगठन में दररें पैदा करके उनकी एकता को खंडित करना, मजदूरों में भी मालिक के इशारे पर नाचनेवाले एक वर्ग का होना, शोषण की जानलेवा स्थिति को समाप्त करने के लिए प्रतिबध्द दूसरे वर्ग का मजदूरों में होना, व्यवस्थापन के दलाल के रुप में संगठन के सेक्रेटरी व्दारा काम करना, पूंजीपति वर्ग व्दारा मजदूर नेताओं की हत्या और पीटाई करना, आंदोलन के दौरान मजदूरों की व्यवस्था के पालतू गुण्डोंव्दारा पीटाई करना, मजदूर युनियन के नेता को नाना लालच दिखाकर अपना पक्षधर बनाना, ऐसे नेताव्दारा मजदूर-शक्ति का उपयोग पूंजीपति के हित के लिए करना, उनके नेताओं की सहायता से मजदूरों की संघर्षशील मानसिकता को कुठित करना, श्रमिको के संगठनों को मालिकोंव्दारा लाभ का आमिश दिखाकर समानांतर मजदूर संगठन का निर्माण करना, षडयंत्रों के जाल में मजदूर शक्ति को फंसाना आदि के रुप में दोनों की प्रवृतियॉं दिखाकर दोनों की टकराहट से अनेक आंदोलन खडे हो चुके हैं।

निष्कर्ष :

सन 1960 के पश्चात औद्योगिक क्षेत्र का विकास तेजी से होता गया फलतः मिल–मालिकों तथा कारखानों के मालिकों की शोषण प्रवृत्ति बल पकडने लगी। इस शोषण की चक्की में पूरा श्रमिक वर्ग पीसता जा रहा है। मिल–मालिक और मजदूरों के बीच की खाई गहरी बनने लगी है। वास्तव में सन 1960 के पश्चात अधिक मात्रा में मिल–मालिक एवं पूंजीपति, कारखानदारों की प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालनेवाले अधिक उपन्यास नही लिखे गये। इसका कारण यह हो सकता है कि, भारत में पुंजीपति एंव उद्योगपतियों की विकास यात्रा का इतिहास लंबा नही हैं।

सन 1960 के पश्चात औद्योगिकरण के विकास के साथ–साथ मिल–मालिक–मजदूर के बीच संघर्ष बढने लगा। सन 1970 के बाद इस संघर्ष–पूर्ण स्थितिपर हिंदी में उपन्यास लिखे जाने लगे। इसका कारण यह हो सकता हैं कि सन 1970 के बाद भारत में पूंजीवाद से उत्पन्न कटुता अधिक मात्रामें देखने को मिलने लगी। हिंदी भाषा प्रदेशों के फल कारखानों में काम करनेवाले मजदूरों का अधिक शोषण होता रहा इसलिए हिंदी के उपन्यासों में इस मजदूर वर्ग की कथा–व्यथा अधिक गहराई से व्यक्त हो चुकी है। आज नवपूंजीपति वर्ग का निर्माण होता जा रहा हैं। जो श्रमिकों के तनखे में से पैसे काटकर खुद पूंजीपति बनना चाहते हैं। ये नवपूंजीपति अत्यंतिक खतरनाक तरीके से मजदूरों का शोषण करते हैं।

बंबई में कअी वर्ष पहले कअी कपडों की मिले बंद कर दी, तालाबंदी कर दी, जिससे मजदूरों की स्थिति खतरनाक बनी। आज भी ऐसी मिले बंद करके वहाँ अलिशान होटल बनाने की योजनाएँ शुरु हैं। इसी से "गिरणगाँव बचाव संघर्ष परिषद" का निर्माण हो रहा है। आज कपडा मिल में काम करनेवाले, चोनी मिल में काम करनेवाले, सर्वहारा मजदूरों की समस्याओं को सही दिशा से सुलझाने का प्रयत्न नहीं हो रहा है। उनकी किस्मत में आज भी गरीबी, मक्कारी, मजबूरी, असुरक्षितता की भावना कायम है। हमारी सरकार आज भी समाजवादी समाजव्यवस्था पर बल दे रही है। परंतु मजदूर आंदोलनों को दबाने के लिए पुलिस माहौल की सहायता लेती है। सही रुप मं मजदूरों का राज्य अभी तक नहीं आ रहा हे यह यहाँ सिध्द होता है।

मिलमजदूर–मिलमालिक के बीच आंदोलन को साठोत्तरी कालखंडके सतीश जमाली के "प्रतिबध्द", 1974, मधुकर सिंह के 'सबसे बडा छल", 1975, आशिश सिन्हा के "सम्य बीतता हुआ", 1978 आदि उपन्यासों में उभारकर मिलमजदूरोंमे पनपनेवाली चेतना–प्रवृत्ति और इसीके

परिणाम स्वरुप खडे होनेवाले आंदोलनों को दिखाया है।

(4) नारी–मुक्ति आंदोलन :

भारतीय नारी पुरुषव्दारा अनुशासित होती है। नारी को एकसाथ देवी और भोग्या, माया और शक्ति, श्रध्दा और उपेक्षा की अधिकारी मानी जाती है। आज नारी को परंपराबध्द मान्यताओं एवं विशेषणों के आलोक में देखना अनुचित लगता है। नर की भाँति नारी भी एक सामान्य प्राणी है। प्रजनन क्षमता एवं विशिष्ट शरीर रचना के कारण वह पुरुषों से भिन्न —र आती हैं। वस्तुतः नारी अपनी स्वतंत्र सत्ता को खोकर पुरुष की अनुगुंज मात्र बनकर रह गयी है। पुरुष उसका भाग्यविधाता और पालनकर्ता बन गया है फिर भी नारी के बिना पुरुष का ही नहीं समाज और राष्ट्र का विकास संभव नहीं है। "19 वी शताब्दी के भारतीय नवजागरण आंदोलन ने नारी को केंद्र में रखकर उसकी स्थिति में सुधार के लिए अथक प्रयत्न किए। सामाजिक कुरीतियों की बेडियों से मुक्त शिक्षा के प्रकाश से प्रदीप्त, आर्थिक स्वावलंबन की ओर गतिशील जो नारी आज हमें दिखाई पड़ती है, उसके पीछे समाज–सुधार को राजनेताओं एवं महिला आंदोलनकारियों के सवा सौ वर्ष के संघर्ष का रोचक इतिहास है।"[13]

इस संघर्षमयी इतिहास की सफलता के परिणाम स्वरुप सन 1950 में भारतीय संविधान ने तथा हिंदू कोड बिल सन 1956 में नारी को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्रों में समानाधिकार दिये गये। इसलिए आज की भारतीय नारी 18 वीं शताब्दी की नारी से भिन्न दिखाई दे रही है। वह अपनी स्थिति के प्रति चेतित नजर आ रही है। उसने अपनी सामर्थ को पहचान कर अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए संघर्ष शुरु किया हैं। आज वह सभी प्रकार के दबावों से दूर होकर अर्थाजन कर रही है। आर्थिक स्वालंबन ने उसमें दृढ़ता और आत्मविश्वास पैदा हो रहा हैं। वह अधिक जागरुक, अधिक स्वप्नदृष्टा बन रही हैं। उसके पैरों में गति आ रही हैं। वह किसी परंपरागत किसी भी मानयताओं को आँखें मूंदकर स्वीकार नहीं कर रही है। तर्क की कसौटी पर वह औचित्य – अनौचित्य को नापने लगी है। गृहस्थी के साथ–साथ दफ्तरों, फैक्टरियों में पुरुषों के कंधो से कंधो लगाकर काम कर रही हैं। अस्पतालों मे परिचारिका के रुप में, शिक्षालयों में अध्यापिका एवं प्राध्यापिका के रुप में सफलता के साथ काम कर रही हैं। "स्त्री तो सिर्फ घर की लक्ष्मी ही नहीं, विश्व की शक्ति भी हैं। उसका धर्म पति की पूजा ही नहीं पीडित की सेवा भी हैं। उसके कंधे पर गृहस्थी का ही भार नहीं, देश की आजादी का भी भार है।"**14** स्त्री सभी जगह महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही है उसमें सफल हो रही है।

भारतीय नारी आज पुरुष के समान स्वतंत्र भी है और पुरुष के आधीन भी है। आज की संक्रामक स्थिति में नारी परिस्थिति के दबाव से कितनी टूट रही हैं? कितनी विकसित हो रही हैं? उसकी समस्या कौन–कौनसी हैं? आदि पर भी सोचना अनिवार्य हैं। नारी मुक्ति आंदोलन के कारण नारी में अस्तित्व की चेतना निर्माण होती जा रही है।

नारी जागरण आंदोलन को समाज सुधार कों ने बहुत बडा योगदान दिया। राष्ट्रनिर्माण के कार्य में उन्होंने नारियों का सहयोग अनिवार्य समझा। स्त्रियों की स्थिति में सुधार लाने के लिए समाजिक कुरितियों को समाप्त करके कानूनी अधिकार दिलाकर समाज में नारी के अस्तित्व को बढ़ाया। शिक्षा के प्रचार से नारी में आत्मविश्वास जागृत किया। नारी आंदोलनों का निर्माण करके नारी को पुरुषों के साथ आगे बढने की प्रेरणा दी।

पराधिन भारत में भारतीय नारी के जीवन को अभिशप्त बनानेवाली अनेक बाधाएँ थी। कुप्रथाएँ थी। इस दिशा में सती प्रथा जैसी कुप्रथा का राजाराम मोहनराय ने सन 1829 में सतीप्रथा बंदी कानून पारित करवाकर निर्मूलन किया।

सती प्रथा के साथ–साथ बाल–विवाह प्रथा ने भी नारी के जीवन को आभिशापित बनया था। इस कुप्रथा को दूर करने के लिए ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने सन 1860 में एक अधिनियम पारित करवाकर लडकी के विवाह की उम्र दस वर्ष स्वीकृत करवाई, सन 1887 में रेशनल कांग्रेस के अधिवेशन में रानडे के प्रयास से लडकी के लिए विवाह की न्यूनत्तम आयु बढाकर 12 वर्ष कर दी। सन 1929 में बाल–विवाह नियंत्रक अधिनियम पारित करके विवाह के लिए लडकियो की उम्र न्यूनत्तम 13 वर्ष कराई गई। सन 1955 में इस मर्यादा को बढ़ाकर लउकियों के लिए विवाह की उम्र 14 वर्ष करा दी। आज लडकियों के लिए विवाह की न्यूनत्तम उम्र 18 वर्ष हो गयी है। इसके पीछे समाज सुधार कों के प्रयत्न महत्त्वपूर्ण हैं।

नारी की स्थिति में सुधार करने के हेतु उन्हें कानूनी अधिकार संविधानव्दारा प्रापत होने लगे। सती–प्रथा–बंदी , बाल–विवाह–नियंत्रक कानून, विधवा–पुर्नर्विवाह संस्था का निर्माण हुआ, 1887 में विधवा आश्रम खोले गये। आज विधवा पुनर्विवाह कर सकती है। आज हमारी सरकारने पिताजी की तथा पति की संपत्ति में भी नारी को अधिकार प्राप्त करा देकर, नौकरी में नारियों के लिए आरक्षण रखकर इस दिशा में उन्नत कदम उठाये हैं। सभी क्षेत्रों में नारी को अधिकार प्राप्त हो रहे हैं। शिक्षा क्षेत्र में नारी अग्रसर बनती जा रही है।

नारी की स्थिति में सुधार करने के हेतु नारी में शिक्षा प्रसार करना अनिवार्य था। समाज सुधारकों ने स्त्री–शिक्षा को प्रात्साहन दिया है। स्त्री शिक्षा–प्रसार में ईश्वरचंद्र विद्यासागर का महत्वपूर्ण स्थान है उन्होंने अंग्रेज वायसराय की सहायता से सन 1849 में एक कन्या विद्यालय की स्थापना कलकत्ता में की। सन 1854 में स्त्री–शिक्षा को सरकार की पूर्ण सहानुभूति देने का प्रस्ताव पारित हुआ

आज नारी की शिक्षा स्थिति में सुधार हो रहा है। सभी विद्याशाखाओं में नारियाँ शिक्षा लेने के हेतु अग्रणी रही हैं। देश के विभिन्न नगरों, महानगरों एवं कस्बों मे महिला महाविद्यालय खोले जा रहे हैं। महाराष्ट्र में महात्मा फुले का योगदान इसी दिशा में अधिक महत्वपूर्ण रहा है। आज राजनीतिक, सामाजिक क्षेत्र में उच्च विद्या विभुषित नारियाँ उँचे–ऊँचे पदोंपर विराजमान हैं। फिर भी इन नारियों पर बलात्कार हो रहे हैं, विविध जगहों पर नारियों की दुर्बलता को लेकर वासनाकांडों का निर्माण हो रहा हैं। उन्ही नारीओं को समाज के लोग वेश्या कहकर बहिष्कृत करते हैं। "नारकीय जीवन बितानेवाली नारियों की समाज ने अपने विनोद और वासना की तृप्ति के हेतू एक पृथक् श्रेणी निर्मित कर दी है। समाज ही उनके पतन और दुर्दशा के लिए उत्तरदायी है। वैसे उनमें भी अनेक उच्चतर मानवीय गुणों से विभुषित नारियों का आभाव नहीं हैं परंतु उदर की अग्नि बुझाने के लिए उन्हें यह घृणित व्यवसाय करना पडता है। इसमें उनका क्या दोष? हमे उनसे घृणा नही कनी चाहिए वे दया की पात्रा हैं, और सहानुभूति तथा करुणा का दान ही उनके उत्थान का एक मात्र साधन हैं।"[15] नारी को दहेज की बलिवेदी पर स्वाहा होने लगी हैं। धार्मिक अंधःविश्वास के कारण देवदासियों की प्रथा के कारण नारी का शोषण हो रहा है। आर्थिक दुर्बल नारियों का दैहिक शोषण हो रहा है। इस हालत में नारी के विविधमुखी शोषण को नष्ट करने की लिए सरकारी स्तर पर विविध प्रयत्न किये जा रहे हैं। सन 1975 अंतराष्ट्रीय महिला वर्ष के रुप में मनाकर नारी की दयनीय पीडाओं को चेतित करने का प्रयत्न शुरु हुआ। नारी मुक्ति आंदोलन को चलाकर नारी को मु॰ करने का, स्वतंत्र बनाने का प्रयत्न हुआ। फलतः विविध नारी आंदोलनों का निर्माण होने लगा।

अत्याचार की सीमा रेखाओं को काटने का प्रयत्न आंदोलन के माध्यम से होता जा रहा हैं। सन 1994 में जलगाव और सावंतवाडी वासनाकांड के खिलाफ नारियों ने आंदोलन करके अपनी शक्ति को प्रदर्शित किया है। यह नारी चेतना का अच्छा उदाहरण हो सकता है।

स्त्री के अत्याचार, शोषण का चित्रण आज तक अनेक उपन्यास और अन्य साहित्य में भी हुआ है। स्त्री के गुण और दोष दोनों को साहित्य में चित्रित किया है। प्रेमचंदजी ने गबन,

"सेवासदन", प्रतिज्ञा" आदि उपन्यासो में नारियों की समस्या एवं उनके स्थिति के कारणों पर प्रकाश डाला है। अज्ञेयजी के "नदी के व्दिप" व्दारा "सेक्स" की समस्या पर प्रकाश डाला है। भगवतीप्रसाद वाजपेयी के 'अनाथ पत्नी", "त्यागमयी", "पतिता की साधना", "वृंदावनलाल वर्मा के "लगन" निराला के "अप्सरा", 'अलका' आदि उपन्यासें में नारी का चित्रण किया है। "समाज ने स्त्री को विवश बनाने के लिए जो-जो नियम बना रखे हैं, रुढियाँ बना रखी हैं, उनकी खाल उधेडना इन उपन्यासों का ध्येय है। दहेज, कुलीनता, पुरुष की व्यभिचार-वृत्ति आदि जितनी बातें स्त्री को विषम परिस्थिति में डालती हैं उनको एक-एक करके लिया गया है।"[16]

निष्कर्ष :

भारतीय पुरुषप्रधान संस्कृति में नारी को गौण स्थान मिला है। फिर भी भारतीय महिलाओं की स्थिति पश्चिम से कअी मायने में भिन्न है। आजादी के बाद नारी को घर से बाहर जाने का अवसर मिला, वैधानिक समानाधिकार मिले, फलतः सभी महौलों में स्थित नारियों को विकास की अच्छी पृष्ठभूमि मिली परंतु आज भी कअी नारियाँ पिछडापन भुगत रही हैं। वह अपने हितों, हकों से अनभि हैं। तो कअी नारियाँ मिले हुए हकों का दरुपयोग भी कर रही हैं। सन 1975 में मनाये गये अंतराष्ट्रीय महिला वर्ष ने नारी की अस्मिता एवं अस्तित्व को अधिक जागरुक करने का प्रयत्न किया फिर भी आज नारियों की स्थिति में सही सुधार नहीं रहा हैं। नारी जीवन की मजबूरी, उसकी दुर्बल आर्थिकता, पुरुषों के रक्षाकवच के अंदर पलने की उसकी मनोवृत्ति के कारण नारी के सामने अनेक समस्याओं का निर्माण हो रहा हैं विधवा नारी, वेश्या नारी, बलात्कारित नारी, अवैध-मातृ.व का बोझ ढोनेवाली नारी आदि अनेक नारी के रुपों पर साठोत्तरी 'सुहाग के नुपुर", बडी चंपा छोटी चंपा, "नदी फिर वह चली", 'मुरदाघर", यह भी नहीं", "सामर्थ्य और सीमा", "अंतराल", दीर्घतया, उग्रतारा, सुबह के इंतजार तक, सीधी-सच्ची बातें, माटी की महक", समय बीतता हुअी' आदि अनेक उपन्यासें में नारियों की विविध समस्याओं पर प्रकाश डाला है, परंतु इन समस्याओं के खिलाफ नारियोंव्दारा आंदोलन खडा नहीं हो पाया हैं, यह लक्षित होता। आज के नारी-मुक्ति आंदोलन का प्रभाव हिंदी के उपन्यासों में अधिक मात्रामें देखने को नहीं मिल रहा है। इसमें केवल नारी स्वतंत्रता को ही स्वीकृत किया हैं, परंतु नारी समूहव्दारा अन्यायी और अत्याचारियों के खिलाफ आंदोलन चलाये हुए नहीं लक्षित हो रहे हैं। केवल समस्याओं के प्रस्तुती करण के माध्यम से नारी के शोषण पर बहुआयामी दृष्टि से सोचा है।

(5) युवा आंदोलन :

युवा आंदोलन का अधिकाधिक संबंध छात्र आंदोलनसे जुडा है। छात्र देश के विकास में महत्वपूर्ण घटक है। छात्रों की सुविधा की तरफ ध्यान देना आवश्यक है। आज छात्रों को अनेक समस्याओं ने घेर लिया है। आजादी के पूर्व छात्रों के समस्याएँ तीव्र होती गयी। छात्रोंद्वारा आजादी के पूर्व आंदोलन चलाये गये वे आंदोलन आजादी के लिए चलाये गये। आजादी के बाद आंदोलन का उद्देश्य बदल गया। छात्र संघटना में विभाजन हुआ कुछ साम्यवादी बने कुद आतंकवादी बने लेकिन सबको अपने हक पाने थे। रास्ते सबके अलग थे मगर मंजील एक ही थी। छात्रों को बेरोजगारी की समस्याओं ने ज्यादा त्रस्त किया। बेरोजगारी का मुख्य कारण था "गलत शिक्षा पध्दति"। अँग्रेजों के समय जो शिखा व्यवस्था थी वह उनके स्वार्थ के लिए उपयुक्त थी। वह पध्दति एकांगी और दूषित पध्दति भी। सिर्फ पुस्तकों की रटंत विद्या पर ही जोर था। समाज के नैतिक, सांस्कृतिक मूल्यों से दूर था, और व्यक्ति उस शिखा से आत्मनिर्भर नहीं बन सकता था। प्रमचंदजी इसी बात पर जोर देते हैं कि – "जीवन को सफल बनाने के लिए शिक्षा की जरुरत है, डिग्री की नहीं। हमारी डिग्री है – हमारा सेवाभाव, हमारी नम्रता, हमारे जीवन की सरलता। अगर यह डिग्री नहीं मिली, अगर हमारी आत्मा जागरित नहीं हुई, तो कागज की डिग्री व्यर्थ है।"[17] कुछ लोग शिक्षित तो होते हैं, मगर उनका चरित्र नैतिक दृष्टि से पतित होता हैं। "गबन" के रमानाथ, "गोदान" के मि. खन्ना, "गली आगे मुड़ती है" के "बक्कडगुरु" आदि पात्र इस बात के अच्छे उदाहरण हैं।

इसतरह शिक्षा का स्वरुप, शिक्षा पध्दति आदि में परिवर्तन लाने के लिए आंदोलन दुगुनी शक्ति से आगे बढ़ाने का प्रयास युवाछात्रोंव्दारा किया है। इस बात का परिणाम यह हुआ कि, आज ज्यादा मात्रा में तांत्रिक शिक्षा पर ध्यान दिया गया ताँकि आनेवाली पीढी आत्मनिर्भर बन सके। इससे देश का विकास भी जल्दी हो सकता है।

बेरोजगार की समस्या के साथ केवल प्रवेश के लिए डोनेशन्स के रुप में रुपयों की माँग, डोनेशन के लिए जो चाहे करो, कर्ज लो, गहने गिरवी रखो, लोटा–थाली बेचो, चोरी करो मगर डोनेशन दो नहीं तो आपको कही भी प्रवेश नहीं मिल सकता। इसी का परिणाम यह है कि, आज पैसों के लिए अपनी आत्मा को बेचनेवाले छात्र हैं। लेकिन इसमें आश्चर्य करने की बात नहीं है हमारी शिक्षा व्यवस्था इतनी गिर गयी है, शिक्षा का स्तर भी गिर गया है। शिक्षा लेते सनय सच्ची मेहनत करनेवाले छात्रों पर अन्याय होता है। जिनके पास पैसा वही शिक्षा के लायक बन सकता हे

मगर गरीब छात्र होशियार होकर भी शिक्षा नहीं ले सकता। इस व्यवस्था में परिवर्तन लाना आवश्यक है नहीं तो कल हमारे देश का भविष्य खतरे में आयेगा। शिक्षा क्षेत्र में भ्रष्टाचार का क्षेत्र फैल जायेगा।

इन सभी बातों को रोकने के लिए आंदोलन तीव्र बनाने चाहिए। छात्रों व्दारा "भारतीय छात्र संघ", स्टूडंन्ट फेडरेशन", "अखिल भारतीय छात्रसंघटन" आदि संघटनोव्दारा आंदोलन चलाये जाते हैं।

निष्कर्ष :

संक्षेप में शिक्षा आदमी को सद्‌विचार, आचार और आदर्श बनाती है। शिक्षा से आदमी आत्मनिर्भर होता है। लेकिन गलत शिक्षा पध्दति के कारण शिक्षा की ओर देखने का नजरियाँ बदल चुका है। छात्रों के अनेक प्रश्न खडे हैं उसमें बेरोजगार का प्रश्न, शिखा की बढ़ती फिसों का प्रश्न, शिक्षा व्यवस्था स्थित भ्रष्टाचार आदि के विरोध में आंदोलन जारी हो रहे हैं। मगर रुपयों की सहायता से छात्रनेता को भ्रष्टाचारी लोग अपनी ओर लेकर उनके आचार-विचारों को खरीदते हैं। आंदोलन सिर्फ दिखावा बन गया है। आंदोलन को सही दिशा नहीं है, उसमें राजनेताओं के हस्तक्षेप होने के कारण आंदोलन असफल बन रहे हैं। हिंदी भाषा" का प्रश्न आज भी वैसा ही हैं जैसा पंडित नेहरु के समय में रहा था। आज भी हिंदी के साथ सौतेला व्यवहार हो रहा हैं। इसी से हिंदी भाषीक लोगों में विकास गति रुक गयी है अंग्रजी अब विश्व की भाषा बनी है। लेकिन आंदोलन के उद्देश्यों को खरीदने के कारण आंदोलन में सफलता नहीं मिल रहीं हैं।

विश्वविद्यालयों में आज उपाधियों को बेचा और खरीदा जा रहा है। इसी कारण उन उपाधि को कोई महत्त्व नहीं हैं सिर्फ नाम की उपाधि रही है। छात्र आंदोलन की ओर हिंदी साहित्यिकों के व्दारा संकेत किया है। छात्रों की समस्याओं को उजागर करने का प्रयास किया हैं। शिवप्रसाद सिंह का "गली आगे मुड़ती हैं", अमृतलाल नागर का "अमृत और विष", संतोष नारायण नौटियाल का "चाय पार्टिया", देवेश ठाकुर "कॅाचघर" आदि में शिखा क्षेत्र का भ्रष्टाचार और गलत नीति पर प्रकाश डाला गया है।

संक्षेप में देश ; छात्रों में निराशा आयी है वह आंदोलन के रुप में लोगों के सामने आती है। अपना निजी स्वार्थ हासिल करते समय किसी भी बात का वे विचार नहीं करते। इसीसे युवापीढी आत्मकेंद्रित बनती जा रही है। उन्हें कोई भी कानून रोक नहीं सकता हें। देश के विकास को आगे बढ़ाना हो तो युवाछात्रों को हाथ में लेना चाहिए। देश के विकास में "छात्र"

"ओयासिस" लगते हैं उनपर देश का भविष्य निर्भर है। स्व. राजीव गांधी ने छात्रों के कुछ सवाल सुलझाने का प्रयास किया है। इसमें कुछ मात्रा में वे सफल बने हैं। सही अर्थ से देश का भविष्य प्रकाशमयी बनाना है तो युवकों को आत्मनिर्भर प्रयत्नशिल एवं सामर्थ्य पूर्ण बनना चाहिए। छात्रों के प्रश्न सुलझाने के लिए शासन को सहाय्य करना चाहिए सही अर्थ से उनकी समस्याओं समझ लेना चाहिए और वह सुलझानी चाहिए। ताकि आनेवाली नयी पीढी निराश एवं आत्मकेंद्रीत न बने।

निष्कर्ष :

आजादी के पूर्व हमारे देश में अनेक समस्याएँ स्थित थी और आज भी हैं। इसमें ज्यादातर सामाजिक समस्याएँ हैं। जेसे नारी समस्या, कृषक समस्या, मिलमजदूर समस्या, धार्मिक समस्या, दलितों की समस्या, युवा–छात्रों की समस्या आदि। इन सभी समस्याओं में निम्न वर्ग, उच्चवर्गव्दारा पिसता गया। उनपर बहुत अत्याचार हो रहे थे, आजादी के बाद भी इस स्थिति में परिवर्तन नहीं आया। ये सब सहते–सहते निम्नवर्ग का क्रोध संघर्ष में बदल गया। किसी संघटन के व्दारा आंदोलन किये गये अपने हक के लिए निम्न और मध्यवर्ग लढने लगा। कुछ मात्रा में उनकी माँगें पूरी की गयी। पहले से ज्यादा सुविधा मिल गयी, शिक्षा, तथा नौकरी एवं राजव्यवस्था आदि में सुविधा मिलने से निम्न वर्ग विकसित हो जाने लगा। आंदोलन के लिए मार्क्सवादी विचारों के लोग जागृति का काम करने लगे। साहित्यिक लोगोंव्दारा जागृति का कार्य आगे बढा। आज भी पूरी तरह की सुविधाएँ नहीं मिली हैं। आज भी नारी आंदोलन बढाने की आवश्यकता है। मिल मजदूर आंदोलन, कृषक आंदोलन, छात्रांदोलन तीव्र होने चाहिए। आंदोलन एवं नेतृत्व निःस्वार्थी होना चाहिए निजी स्वार्थ के लिए कोई स्थान नहीं चाहिए। एकता से न्याय मिलता है।

आज तक इतने आंदोलन हुए मगर वे पूर्ण रुप से सफल नहीं हुए। इसके लिए दुर्बल आंदोलन, निजी स्वार्थ, राजनीतिक स्थिति, भ्रष्टाचार, स्वार्थ की प्रवृत्ति, एकता का अभाव आदि कारण जिम्मेदार हैं। आज भी निम्न और मध्यमवर्गपर अत्याचार हो रहे हैं, अगर उन्हें सही दिशा और नेतृत्व मिला तो उन प्रश्नों को सुलझा जा सकता है। ये जिम्मेदारी आज की युवापीढी पर है, आज तक युवापीढी ने इसके विरोध में संघर्ष किया वह भी महत्वपूर्ण था। "राजीव गांधी" व्दारा इन प्रश्नों को सुलझाने का प्रयास किया और कुछ मात्रा में सफल हो चुके थे।

युवापीढी को जागृत करके उन्हें सही नेतृत्व एवं दिशा मिली तो निश्चित रुप से आंदोलन सफल होंगे। प्रस्तुत लघु–शोध–प्रबंधमें हमने आंदोलनके विविध आयामों को प्रस्तुत करके आंदोलन की आवश्यकता पर जोर दिया है। आंदोलन के आधार पर समाजक्रांति और सामाजिक प्रबोधन आवश्यक बताया गया है।

संदर्भ सूची

01) कृष्ण बिहारी मिश्र -- "आधुनिक सामाजिक आंदोलन और हिंदी साहित्य" आर्य बुक डेपो प्रकाशन, 30 नाईवाला, करोल बाग, नई दिल्ली, प्र.संस्करण 1972. पृ.70

02) रजनीकुमार - "हिंदी कहानी के आंदोलन और उपलब्धिया और सीमाएँ" नेशनल पब्लिशिंग हाऊस दिल्ली प्र. सं.1986 पृ. 1

03) कृष्ण बिहारी मिश्र "आधुनिक सामाजिक आंदोलन और हिंदी साहित्य", आर्य बुक डेपो प्रकाशन, नई दिल्ली प्र.संस्करण, 1972, पृ.232

04) वही पृ.233

05) डॉ.वाय्.बी. धुमाळ -- "साठोत्तरी हिंदी और मराठी के सामाजिक उपन्यासों का प्रवृत्ति मूलक तुलनात्मक अध्ययन" (1960-80), अप्रकाशित शोधप्रबंध, पुणे विश्वविद्यालय 1985 पृ. 247-248

06) डॉ.जितेंद्र वत्स - "साठोत्तरी हिंदी कहानी और साम्यवादी राजनीतिक चेतना" साहित्य रत्नाकर, कानपुर प्र.सं. 1989 पृ. 257

07) महीप सिंह, चंद्रकांत बांदिवडेकर - "साहित्य और दलित चेतना" अभिव्यंजना प्रकाशन, दिल्ली, प्र. संस्करण -- 1982 पृ. 9

08) बाबुराव बागुल अध्यक्षीय भाषण, दूसरा महाराष्ट्र बौध्द साहित्य संमेलन महाड

09) कृष्ण बिहारी मिश्र "आधुनिक सामाजिक आंदोलन और आधुनिक हिंदी साहित्य" आर्य बुक डेपो प्रकाशन, नयी दिल्ली. प्र.स. 1972 पृ. 287-288

10) डॉ.वाय.वी.धुमाळ "साठोत्तरी हिंदी ओर मराठी के सामाजिक उपन्यासों का प्रवृत्तिमूलक तुलनात्मक अध्ययन" (1960-1980), अप्रकाशित शोधप्रबंध, पुणे विश्वविद्यालय, 1985 पृ.522

11) महाराष्ट्र जीवन -- संपादक गं.भा. सरदार, भाग 1, पृ.28

12) डॉ. वाय्. बी. धुमाळ "साठोत्तरी हिंदी और मराठी के सामाजिक उपन्यासों का प्रवृत्तिमूलक तुलनात्मक अध्ययन" (1960–1980)
अप्रकाशित शोधप्रबंध पुणे विश्वविद्यालय, 1985 पृ. 237–238

13) डॉ. रोहिणी अग्रवाल "हिंदी उपन्यास में कामकाजी महिला", दिनमान प्रकाशन, दिल्ली – प्र. संस्करण 1992 पृ. 9–10

14) कृष्ण बिहारी मिश्र "आधुनिक सामाजिक आंदोलन और आधुनिक हिंदी साहित्य" आर्य बुक डेपो, नई दिल्ली प्र. सं. 1972, पृ. 300

15) वही पृ. 296

16) डॉ. एन्. एस्. गणेशन "हिंदी उपन्यास साहित्य का अध्ययन" व्दि. संस्करण 1967 राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट दिल्ली, इ. स. **पृ. 199**

17) कृष्ण बिहारी मिश्र "आधुनिक सामाजिक आंदोलन और आधनिक हिंदी साहित्य", आर्य बुक डेपो प्रकाशन, नयी दिल्ली प्र. सं. 1972, पृ. 197